शिक्षा का अधिकार और उस ढाई आखर की कमी

रश्मि पालीवाल

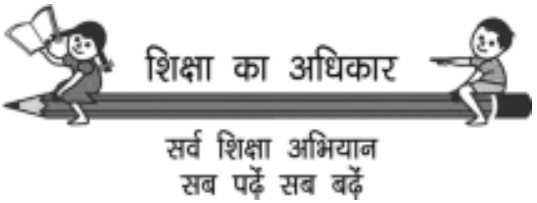

सितम्बर, 2010

हमारे एक परिचित शिक्षक एक दिन हमारे पास आए और बेहद संजीदगी के साथ बोले, "शिक्षा अधिकार लागू करने के निर्देश हुए हैं। पर कुछ बच्चे तो स्कूल आते ही नहीं हैं, मैंने हर तरह के प्रयास कर लिए हैं। आप उनकी बस्ती में ही उनके लिए कुछ काम क्यों नहीं शुरू कर देते?"

उनके आग्रह पर हमने बच्चों के घर जाकर बातचीत करने की कोशिशें कीं। ये बच्चे हमारे यहाँ पुस्तकालय में आते रहते थे। एक मज़दूर परिवार ने हमें बताया कि उनका एक लड़का मोहन पास के प्रायवेट स्कूल में जाया करता था। पर वहाँ उसने कुछ नहीं सीखा। उसे पढ़ना भी नहीं आ पाया। और वह 6वीं में आ गया। उसका मन स्कूल से उचट गया और एक साल तो वह स्कूल गया ही नहीं। प्रायवेट में फीस भी देते थे और बच्चे ने कुछ सीखा नहीं। उसके भाई-बहन सब सरकारी स्कूल में पढ़ते हैं। अब वह भी सरकारी स्कूल में जाना चाहता है। वे उसे लेकर स्कूल गए पर मास्टरजी ने कहा कि टी.सी. लेकर आओ तो देखेंगे। वे डरते हैं कि टी.सी. लेने जाएँगे तो प्रायवेट स्कूल वाले फीस के बकाया पैसे लिए बिना टी.सी. देंगे नहीं।

मैंने बताया कि "अब आर.टी.ई. के कारण टी.सी. के न होने पर स्कूल प्रवेश देने से मना नहीं कर सकते। क्यों न हम फिर से स्कूल जा कर बात करें?"

अगले दिन मैं स्कूल गई।

स्कूल के प्रधान पाठक और एक शिक्षिका से आर.टी.ई. पर मेरी पहली

चर्चा कुछ यूँ हुई-

मैं: शासन ने आपसे आर.टी.ई. के लिए अंडरटेकिंग भरवाई है?

प्रधान पाठक: हाँ, कुछ थी। पर शायद हमने जमा नहीं की है। यहीं स्कूल में रखी है।

वे अंडरटेकिंग के प्रावधानों को लेकर कुछ अन्यमनस्क से लगे। बोले: आर.टी.ई. तो लागू नहीं होगा न? उत्तर प्रदेश ने लागू करने से मना कर दिया है। कहा है पहले सारी व्यवस्थाएँ केन्द्र सरकार करे, फिर हम लागू करेंगे। उसमें 35 बच्चों पर एक शिक्षक का नियम है पर सरकार कहाँ दे रही है शिक्षक? हमारे स्कूल में ही 6वीं में अभी 70 बच्चे दर्ज हैं; हमें कहाँ मिले दो शिक्षक? सरकार ने एक शिक्षक की पदस्थापना कर दी थी। पर उसने ज्वाइन नहीं किया है। वह आना नहीं चाहता यहाँ। वो प्रयास कर रहा है अपने स्तर पे।

मैंने मुद्दे पर आते हुए मोहन के दाखिले की बात रखी। कहा कि एक लड़का कुछ दिन पहले आया था आपके यहाँ 6वीं में दाखिला लेने, पर आपने कहा कि दाखिला नहीं हो सकेगा... मैं समझना चाहती हूँ कि क्या बात थी।

प्रधान पाठक: जो बच्चा आया था यहाँ प्रवेश लेने वो पहले से किसी स्कूल में था न, वो भी प्रायवेट स्कूल में? तो वो तो यहाँ से बेहतर ही होगा? वो बच्चा वहीं क्यों नहीं कंटीन्यू करता? फिर अगर उसे पढ़ना नहीं आया है तो हम उसे 6वीं में कैसे बैठा सकते हैं? प्रायमरी की बात और है। पर मिडिल में तो ऐल्जेब्रा वगैरह सब पढ़ना होता है। कुछ बच्चों को वो सब पढ़ाऊँ और एक बच्चे को अनाराम पढ़ाऊँ, यह कैसे हो सकेगा? उसे उसी कक्षा में बिठाना होगा जिसमें उसकी शैक्षिक आयु उपयुक्त हो।

मैंने कहा: नहीं सर, हमें उसे उसकी उम्र के अनुरूप कक्षा में रहने का मौका देना है। हमें आर.टी.ई. के तहत कुछ तो व्यवस्था करनी होगी। थोड़ा प्यार से हौंसला बाँधें तो बच्चा सीखने लगता है, जितना हो सके। हमें उसे मौका तो देना होगा।

प्रधान पाठक: देखिए, हम हैं क्या? हम तो सरकारी कर्मचारी हैं।

मैं: गुरू भी हैं आप सर...

प्रधान पाठक: नहीं हम गुरू नहीं हैं। हम शासकीय कर्मचारी हैं और शासन की तरफ से हर महीने ये प्रपत्र आ जाते हैं - टेस्ट के लिए - कि इस एक महीने में बच्चे को यहाँ तक सीख लेना है। तो अब यह बालक, जो अनाराम नहीं जानता, मैं उसे ये टेस्ट कैसे दिलवाऊँ?

मैं: टेस्ट दिलवा दीजिए सर। वह जितना कर पाएगा करेगा। उसकी ग्रेड *डी* या *ई* रहेगी... तो रहने दीजिए। कक्षा में रह कर और आप जो भी उसकी मदद कर सकें उससे वो जितना सीख सकता है उतना 14 साल की

आयु तक उसे सीखने का मौका मिलना चाहिए...

प्रधान पाठकः मैं भी राज्य शिक्षा केन्द्र से जुड़ा रहा हूँ... मैं प्रभारी बी.आर.सी. के पद पर भी रह चुका हूँ... तब मैंने भी ये सारे भाषण खूब दिए हैं... पर मैं नहीं मानता कि बच्चे को कक्षा में न रोकने से फायदा होता है।

मैंः फेल करने से कहाँ सीख जाते हैं बच्चे सर? वे फिर स्कूल आना छोड़ देते हैं... मज़दूरी या धन्धा करने में लग जाते हैं... सीखते थोड़े ही न हैं।

मेरी बातों से थोड़ा दबने लगे थे प्रधान पाठक जी। बोलेः हाँ तो बच्चे को आने को कहिए... उससे एक बार कुछ कह दिया होगा... तो वह लौट के आया ही नहीं। तो कैसे प्रवेश पा लेगा स्कूल में। दो-चार बार आए-जाए, कहे, तो बिठा लेंगे उसे। वैसे कोई ज़रूरी नहीं कि उसकी पढ़ने में रुचि हो ही... ऐसे कई लोग जो थर्ड पर्सन के सामने बहुत अच्छे दिखते हैं... मानो भगवान हों... वे असल में वैसे होते नहीं हैं।

अगले दिन मोहन व उसके बड़े भाई के साथ मैं स्कूल पहुँची।

प्रधान पाठक आज अवकाश पर थे। शिक्षिका और एक अन्य शिक्षक से बातचीत हुई। हमने मोहन के कागज़ात दिखाए। जाति प्रमाण पत्र, तीसरी की मार्कशीट, 5वीं की फीस की रसीदें। शिक्षिका ने मोहन के बड़े भाई को तुरन्त पहचाना। वह उनका छात्र रहा है। शिक्षिका ने कहा, "हाँ, इसे बिठा लेंगे... प्रधान पाठक आज हैं नहीं तो दाखिला तो कल ही होगा पर मोहन चाहे तो आज से कक्षा में बैठ जाए।"

मोहन को देखकर वे कुछ असहज मिठास के साथ बोलने लगीं, "क्यों, तुम पढ़ना चाहते हो? कौन-सी कक्षा में? पर तुम्हें रोज़ नियमित आना होगा... एक दिन भी नागा नहीं करना है। पढ़ना आता है?"

मोहनः पूरा नहीं आता।

(उसने हिम्मत से जवाब दे कैसे दिया... क्यों उसने ज़मीन में नज़र नहीं गड़ाई... क्यों बुदबुदाया नहीं... बिचका नहीं... कि अब पड़ी मार। उसके बोलने से मैं खुश भी थी और हैरान भी।)

शिक्षिकाः पूरा नहीं आता? हूँ...दूसरे स्कूल में तुमने जाना क्यों छोड़ दिया?

मोहनः वहाँ मुझे मारते थे (अब उसकी नज़र झुकने लगी थी और बुदबुदाहट आने लगी थी। इतनी पूछताछ बिना किसी सहानुभूति के उसको परास्त करने लगी थी। मैं सोच रही थी कि शिक्षिका अब तो छोड़ देगी यह सब... और मैं मोहन की तरफ कुछ ढांढस बाँधने वाले अन्दाज़ में देखने को हुई)।

शिक्षिकाः (जैसे मेरे नरम और मोहन के पक्ष में होने के अन्दाज़ का काट प्रस्तुत करना ज़रूरी समझती हो) नहीं, पर क्यों मारते थे तुम्हें... कोई वजह

तो होगी? क्यों पीटते थे... बताओ?

इस बार मोहन चुप रहा और मैं भी।

शिक्षिकाः देखो! तुम्हें मेहनत करनी होगी... तभी तो सीखोगे। इन मैडम के कहने पर तुम्हें दाखिला दे रहे हैं। तुम स्कूल के अनुशासन का पालन नहीं करोगे तो इन मैडम को बता देंगे। दूसरे बच्चों के साथ ताश पत्ते खेलोगे... स्कूल से नागा करोगे... होमवर्क बिना करे आओगे... तो बहुत पिटाई करेंगे तुम्हारी। बोलो करोगे ऐसा...?

मोहन चुप था। नहीं-नहीं में सिर हिला दे रहा था।

उसका बड़ा भाई बोला, "यह स्कूल जाना छोड़ चुका था... कहता था मुझे जाना ही नहीं है... परीक्षा देने के लिए भेजा इसे किसी तरह... पर फेल हो गया। इस साल इसने खुद ही कहा कि मुझे पढ़ना है... मेरा नाम लिखवा दो... तो हम इसे लेकर आए थे।"

शिक्षिकाः तुम आए थे तो मना किसने किया? इसी को मना किया था क्या? (दूसरे शिक्षक से बात करते हुए...) प्रधान पाठक कुछ कह तो रहे थे।

दूसरे शिक्षक ने जवाब दियाः नहीं इसे नहीं। मैं भी 5-6 लड़कियों को लेकर आया था तो सर ने उन्हें मना कर दिया था। मैंने सर को आर.टी.ई. की अंडरटेकिंग वाले बिन्दु बताए थे पर सर बोले कि ये बिन्दु प्रायमरी के लिए हैं... ये मिडिल पर लागू नहीं होते। मैंने सोचा ये मेरे वरिष्ठ हैं... गज़ेटेड अधिकारी हैं... ये कह रहे हैं तो ठीक है।

अंडरटेकिंग की एक प्रति मेरे पास थी। मैंने अंडरटेकिंग के बिन्दु दोनों को पढ़ के सुनाए और दिखाए।

शिक्षकः हाँ, ये तो 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिए हैं... यह स्पष्ट है।

मुझे हेलन केलर का लेख याद आ रहा था... जो देख कर भी नहीं देख सकते। ठीक वैसे ही... जो पढ़कर भी नहीं पढ़ सकते। ज़ाहिर ही है कि देखना और पढ़ना हमारे दिलोदिमाग के भीतर में होता है... नहीं तो एक पेज की अंडरटेकिंग भी इतने सतही तौर पर कैसे ली जाती। मैंने अंडरटेकिंग का हवाला देते हुए मोहन के दाखिले के बारे में एक पत्र प्रधान पाठक के नाम लिख छोड़ा। यह रेखांकित करके दिया कि टी.सी. आदि कागज़ात के न होने के कारण दाखिले से मना नहीं करेंगे।

शिक्षिका ने कहा कि वो कल से आ जाए।

उन्होंने उसके बड़े भाई को सारी हिदायतें व चेतावनियाँ दोहरा दीं। व्यावहारिक बातें भी कर लीं... "कल से बस्ता ले कर आए... और कॉपियाँ भी... किताबें हम दे देंगे... और पैंट बनवा देना इसकी। शर्ट तो है ही

इसके पास... और जाति प्रमाण पत्र की कॉपी लाना... पर इस वर्ष इसे स्कॉलरशिप नहीं मिल सकेगी... हमारे यहाँ से स्कॉलरशिप के फॉर्म जा चुके हैं।"

कल मैं उनके साथ नहीं जा पाऊँगी... और मुझे डर लग रहा है कि मोहन की हिम्मत कब तक बनी रहेगी। अपने एक साथी से कहा है कि कल मोहन के साथ स्कूल चला जाए।

मैं ऐसा महसूस कर रही थी जैसे मैं मोहन को किसी कारखाने में मज़दूरी पर लगा के आ रही हूँ... या किसी जेल में जमा करके आ रही हूँ... क्योंकि अभी तक स्कूल में इस आने वाले के स्वागत में एक स्वर भी नहीं निकला था।

***

और नवम्बर, 2013

मोहन एक साल तक स्कूल जाता रहा। अनियमित। जब बच्चे शाम को पुस्तकालय में आते तो मैं स्कूल के हालचाल जानने की कोशिश करती। बच्चों ने ताड़ ही लिया था कि मैं क्या जानना चाहती हूँ। मिलते ही कह देते, "मोहन स्कूल नहीं जा रहा मैडम जी... दो ही दिन गया था।"

मोहन और झेंप जाता, नज़रें फिरा लेता। वो पूरी तरह एक – न स्कूल जाने वाले – के तौर पर बिन्धता जा रहा था। उसके घर जाती तो उसकी माँ झट यही रोना सुनाने लगतीं। मैं मोहन के बचाव में उसके भाई-बहनों-माँ-दोस्त – सबसे कहती फिरती, "कोई बात नहीं... समझेंगे कि क्या हुआ... क्यों नहीं गया।"

मोहन खुलकर बोलता नहीं था। ज़्यादा कुरेदना मुझे भाता नहीं था। उसका छोटा भाई और मोहल्ले के दूसरे बच्चे जो कुछ बताते उससे शिक्षकों के साथ बन रहे अलगाव और फासले का ही भान होता था। उसके बावजूद और बच्चे स्कूल चले जाते थे... पर मोहन कोशिश करके भी अपने आपको मजबूर न कर सका। मैंने सोचा जब वह शाम को हमारे पुस्तकालय में आता है तो स्कूल में किए गए पाठों पर मैं मौखिक बातचीत कर लिया करूँगी। उसे बस पढ़ने-लिखने में दिक्कत है... पर दुनिया की जानकारी तो है और नया जानने की क्षमता भी। तो शिक्षित होने का एक ही तरीका क्यों बने... पुस्तक बाँच कर शिक्षा लेना। सोचा अगर मौखिक चर्चाओं में वह रुचि लेता है तो इस तरीके की सफलता के बारे में शिक्षिका से बात भी कर लूँगी।

एक-दो दिन हमने यह कोशिश की। मैं पाठ देखकर उससे उसके बिन्दुओं पर बातचीत शुरू करती... वह मेरे साथ बैठता और सुनता... और जैसे ही थोड़ा सहज और सुरक्षित महसूस करता... अपने किसी अनुभव के बारे में बताने लगता। अब मैं उसकी बात को बूझने की कोशिश में लग जाती। उसकी निजी भाषा... झेंप से भरी हुई... उसके अंचल की भाषा –

मेरे लिए एक चुनौती थी। उसका किसी मज़दूरी पर पिता के साथ जाना... या सलकनपुर जैसे किसी मेले में जाना... या गाँव में हुई किसी मार-पीट की वारदात... मेरे सामाजिक अनुभव के दायरे से कुछ बाहर की ही बातें थीं। इन सबके बीच उसकी बातों को ठीक तरह से समझना मेरे सामने एक नई चुनौती थी।

एक चुनौती मैं उसके सामने रख रही थी... स्कूल के पाठ्यक्रम की। एक चुनौती वह मेरे सामने रख रहा था... उसके जीवन के घटनाक्रम की। एक भाषा मैं उसके सामने रख रही थी - पाठ्यपुस्तक की कठिन शब्दावली के विकल्प के तौर पर मेरी बोलचाल की हिन्दी के रूप में। एक भाषा वह मेरे सामने रख रहा था... तमाम अपने ठेठ शब्दों वाली हिन्दी के रूप में जो वह मेरे लिए बोल रहा था। मैं उसकी अनिवार्य शिक्षा में मदद कर रही थी और वह मुझे उसके बारे में शिक्षित होने का अवसर दे रहा था। थोड़ी दोस्ती हो रही थी, थोड़ा हम दोनों ही कुछ नया सीख रहे थे।

इस सिलसिले को बीच में ही रुक जाना पड़ता था... क्योंकि मैं बाहर के दौरों पर चली जाती थी। मेरे चले जाने से उसके आने का क्रम भी टूटने लगता और कुछ महीनों में उसका आना काफी कम होता गया। लोग बताते कि मोहन और उसके दोस्त आते थे और आपकी पूछकर चले जाते थे। एक बार वह आया और कहा कि छठवीं की परीक्षा उसने दे दी है। कैसे दी... क्या पूछना।

दो-एक बार शिक्षिका ने किसी के हाथ सन्देश भिजवाया कि आपका वह बच्चा स्कूल नहीं आ रहा है। वह कभी रास्ते में मिलता तो पूछने पर स्कूल के बारे में कुछ कहना नहीं चाहता। मैं भी परिवार के हाल चाल पूछकर बात छोड़ देती।

अब वह कभी-कभी आता है... स्कूल नहीं जाता...और एक बार उसने मुझे सूचना दी कि 8वीं कक्षा कर ली है उसने। वह घरों की पुताई के काम में लग गया है। उसका छोटा भाई छठवीं में आ गया है... पर वह बहुत अच्छे से पढ़ नहीं सकता। वह तो काफी नियमित है और मोहन की तुलना में बहुत मिलनसार व बेझिझक तबीयत वाला है... पर वह पढ़ना नहीं सीख पाया। वह मुझसे कविता पोस्टर माँगता रहता है... जो मैंने एक बार उनके घरों में प्रिंट रिच माहौल बनाने के लिए बाँटे थे और दीवारों पर चिपकवाए थे... और जो दीवाली की पुताई या बारिश में खराब हो चुके थे। एकलव्य में तो ये लगे ही रहते हैं... बच्चे अक्सर इन्हें घर के लिए माँगते हैं।

कुछ सीधे-सीधे निष्कर्ष

शिक्षा अधिकार कानून को अंजाम देने की एक बच्चे की कहानी मैंने बयान की... जितनी मुझे दिखी। आगे के प्रयासों के लिए इससे कुछ सीधे-सीधे निष्कर्ष निकल आते हैं... मेरी

समझ में। मेरी समझ ज़रूर काफी अधूरी होगी... स्कूल के शिक्षकों का नज़रिया इसमें पूर्णता के साथ नहीं आ पाया है... बच्चों का नज़रिया भी थोड़ा-बहुत ही सामने आ सका है... फिर भी, मेरे मन में उभरने वाले निष्कर्ष कुछ ऐसे हैं:

1. इसे एक कानूनी मजबूरी की तरह पेश करने के नुकसान हुए हैं। इसके पीछे की समाजशास्त्रीय समझ पर प्रशासकों, शिक्षकों व अन्य लोगों के साथ सघन वार्तालाप किए जाने थे। काश कि कानून का मसौदा सामने लाने से पहले इस कानून की कथा और उसमें उलझे-सुलझे द्वन्द्वों की बानगी पर कोई एक जीवन्त किताबिया लिख कर बाँट पाता।
2. बच्चों को एक सकारात्मक परिवेश छोटी उम्र से दिए जाने की ज़रूरत भी सामने आती है। प्रायवेट स्कूलों के साथ भी संवाद बनाना ज़रूरी है, नहीं तो उनकी भूमिका में एक तरह का विकार बना रहेगा।
3. बच्चों के जीवन के अनुभवों को जानने-समझने का महत्व हम पूरी तरह भाँप नहीं पा रहे हैं। हम उनके सामने पाठ्यक्रम लेकर जाएँ – बेशक – पर वे जो लेकर आ रहे हैं, वह भी बिना शक कक्षा के काम-काज का बड़ा घटक बने। इस चुनौती को हल्के ढंग से नहीं लेना चाहिए। इससे हमें भी बच्चों के जीवन, चिन्तन और भाषा में अपने आपको और शिक्षित करने का अनिवार्य अवसर मिलेगा। हम जितना इस अवसर को पहचानेंगे, बच्चों और उनके घर वालों से दोस्तियाँ बनाएँगे, उतना एक लोकतांत्रिक राष्ट्र के विकास में अपना योगदान दे पाएँगे।
4. स्कूल के काम-काज में मौखिक क्रिया कलापों का अनुपात ज़रूरत के मुताबिक बनाए रखा जाना चाहिए। जैसे-जैसे किसी स्कूल के सब बच्चे लिखने-पढ़ने में सहज होते जाएँ मौखिक कार्यों का अनुपात कम किया जा सकता है। यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि स्कूल बच्चों के लिए है, किताबों के लिए नहीं।
5. शासन को आत्म-चिन्तन करना चाहिए कि वह क्या न करे जिससे शिक्षक यह अहसास बना पाएँ कि वे कर्मचारी नहीं, शिक्षक हैं। कम-से-कम शासन को सन्त कबीर को तो याद रखना ही चाहिए... पोथी पढ़ि-पढ़ि (हमारे सन्दर्भ में- पोथी भरी-भरी) जग मुआ और पण्डित भया न कोय, ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पण्डित होय। शायद इस ढाई आखर की ही बस कमी है... यहाँ से वहाँ तक।

रश्मि पालीवालः एकलव्य के सामाजिक विज्ञान कार्यक्रम से जुड़ी हैं। विभिन्न राज्यों में विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के लिए पाठ्यक्रम व पाठ्यसामग्री निर्माण कार्य में सघन योगदान।

✦✦✦✦✦